

महालक्ष्मी का स्वर्णिम स्वरूप है

कनकधारा

— शंकराचार्य



भगवतपाद आद्यशंकराचार्य अपने युग के ही नहीं प्रत्येक युग के लिए और युग - युगान्तरों तक के लिए देवी प्रज्ञा संपन्न युग पुरुष के रूप में विख्यात हैं। एक भारतीय जीवन का एक अत्यन्त उज्ज्वल पृष्ठ जब एक तेजस्वी पुरुष ने अपने अदम्य साहस और बल से पूरे भारत - वर्ष को नवीन चेतना से प्रकाशित कर दिया, केवल ३२ वर्ष की अल्पायु में सम्पूर्ण भारत को एक छोर से दूसरे छोर तक ज्ञान और साधना द्वारा एकीकृत कर दिया। परम्परा से चली आ रही जटिल और गूढ़ साधनाओं के स्थान पर उन्हीं साधनाओं को सरलतम तांत्रोक्त अथवा मांत्रोक्त रूप से प्रस्तुत कर, प्रत्येक सामान्य व्यक्ति के लिए, और साधक - संसार से निकाल कर, गृहस्थों के जीवन तक प्रवेश दिया। उनके प्रयोगों के साथ में जुड़ी कथाएं तो रूपक हैं, जबकि सत्यता यह है कि उनके आग्रह का परिणाम ही रहा, जो हमें अनेक लुप्त साधनाएं और ज्ञान प्राप्त हो सका।

कनक धारा स्तोत्र भी एक ऐसा ही अत्यन्त सरस पद है, जब कि भगवतपाद शंकराचार्य एक वृद्धा की दरिद्रता पर भावविह्वल होकर मधुर कंठ से भगवती लक्ष्मी की आराधना की और उन्हें बाध्य कर दिया कि वह केवल महालक्ष्मी स्वरूप में ही नहीं कनकधारा स्वरूप में उपस्थित हों और जब - जब ऐसे श्रेष्ठ ऋषि और यति आह्वान करते हैं, तो वे आह्वान ही नहीं करते आदेश करते हैं कि उनकी मनोवांछित देवी - देवता उस रूप में उपस्थित हों। कनकधारा स्तोत्र ऐसा ही स्तोत्र है। कनकधारा स्तोत्र भगवतपाद की अन्य रचनाओं की भांति ही अनुपम और विलक्षण है ही, केवल काव्य की दृष्टि से ही नहीं, अपने प्रभाव की दृष्टि से भी आग्रह और प्राणों के बल का ऐसा समायोजन है कि जो भी उसका सस्वर पाठ करे, उसके लिए तो लक्ष्मी हस्तकमलावत हो जाए। हाथ में रखे पुष्प के समान स्पष्ट अत्यन्त सुलभ, दरिद्री से दरिद्र व्यक्ति भी मिटा दे अपने दुर्भाग्य की पंक्तियां, और स्वयं अपना भाग्यविधाता बनकर अपने ही हाथों से लिखे अपने सौभाग्य की पंक्तियां -

कंठ में आतुरता भगवतपाद के समान भाव विह्वलता और योगियों के समान आग्रह, इन्हीं का संयोजन करके स्तुति पाठ करने का विधान है कनकधारा स्तोत्र -

कनकधारा स्तोत्र

अंगं हरे पुलकभूषणमाश्रयन्ती, भृंगांगनेव मुकुलाभरणं तमालम् ।
अंगीकृताखिलविभूतिरपांग लीला, मांगल्यदास्तु मम मंगलदेवताया ॥ १ ॥
मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः, प्रेमत्रपाप्रणिहितानि गतागतानि ।
माला दृशोर्मधुकरीय महोत्पले या, सा में श्रियं दिशतु सागरसम्भवायाः ॥ २ ॥
विश्वामरेन्द्रपदविभ्रमदानदक्ष, मानन्दहेतुरधिकं मधुविद्विषो पि ।
ईषन्निपीदतु मयि क्षणमीक्षणार्द्ध, मिन्दीवरोदरसहोदरमिन्दिरायाः ॥ ३ ॥
आमीलिताक्षमधिगम्य मुदा मुकुन्द, मानन्दकन्दमनिमेषमनंगतन्त्रम् ।
आकेकरस्थितिकनीकिमपक्ष्म नेत्रं, भूत्यै भवेन्मम भुजंगशयांगनायाः ॥ ४ ॥
बाह्यन्तरे मधुजितः श्रितकौस्तुभे या, हारावलीव हरिनीलमयी विभाति ।
कामप्रदा भगवतोपि कटाक्ष माला, कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः ॥ ५ ॥

कालाम्बुदालितलिसोरसि कैटभारे, धाराधरे स्फुरति या तु तडंग दन्यै ।
 मातुः समस्तजगतां महनीयमूर्ति, भद्राणि मे दिशतु भार्गवनन्दनायाः ॥ ६ ॥
 प्राप्तं पदं प्रथमतः किल यत्प्रभावान, मांगल्यभाजि मधुमाधिनी मन्मथेन ।
 मयूयापतेत्तदिह मन्थम मीक्षणार्द्र, मन्दालसं च मकरालयकन्यकायाः ॥ ७ ॥
 दद्याद् दयानुपवनो द्रविणाम्बुधारा, मस्मिन्न वि किञ्चनविहंगशिशौ विष्णवे ।
 दुष्कर्मघर्ममपनीय धिराय दूरं, नारायणप्रणयिनीनयनाम्बुवाहः ॥ ८ ॥
 इष्टा विशिष्टमतयोपि यया दयार्द्र, दृष्टया त्रिविष्टपपदं सुलभं लभन्ते ।
 दृष्टिः प्रहृष्टकमलोदरदीप्तिरिष्टां, पृष्टि कृषीष्ट मम पुष्करविष्टरायाः ॥ ९ ॥
 गीर्तेवतेति गरुडध्वजभामिनीति, शाकम्भरीति शशिशेखरवल्लभेति ।
 सृष्टिस्थितिप्रलयकेलिषुं संस्थितायै, तस्यै नमस्त्रिभुवनैकगुरोस्तरुण्यै ॥ १० ॥
 श्रुत्यै नमोस्तु शुभकर्मफलप्रसूत्यै, रत्यै नमोस्तु रमणीयगुणार्णवायै ।
 शक्त्यै नमोस्तु शतपत्रनिकेतनायै, पुष्ट्यै नमोस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै ॥ ११ ॥
 नमोस्तु नालीकनिभान्नायै, नमोस्तु दुग्धोदधिजन्म भूत्यै ।
 नमोस्तु सोमामृतसोदरायै, नमोस्तु नारायणवल्लभायै ॥ १२ ॥
 सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि, साम्राज्यदान विभवानि सरोरुहाक्षि ।
 त्वद्वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि, मामेव मातरनिशं कलयन्तु नान्यम् ॥ १३ ॥
 यत्कटाक्षसमुपासनाविधिः, सेवकस्य सकलार्थ सम्पदः ।
 संतनोति वचनांगमान, सैस्त्वां मुरारिहृदयेश्वरींभजे ॥ १४ ॥
 सरसिजनिलये सरोजहस्ते, धवलतमांशुकगन्धमाल्य शोभे ।
 भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे, त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ॥ १५ ॥
 दिग्धस्तिभिः कनककुम्भमुखावसृष्ट, स्वर्वाहिनीतिमलचारुजलप्लुतांगम् ।
 प्रातर्नमाभि जगतां जननीमशेष, लोकाधिनाथगृहिणीममृताब्धिपुत्रीम् ॥ १६ ॥
 कमले कमलाक्षवल्लभे त्वं, करुणापूरतरंगितैरपाङ्ग्यै ॥
 अवलोकय मामकिञ्चनानां, प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः ॥ १७ ॥
 स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमूभिरन्वहं, त्रयोमयीं त्रिभुवनमातरं रमाम् ।
 गुणाधिका गुरुतरभाग्यभामिनी, भवन्ति ते भुवि बुधभाविताशयाः ॥ १८ ॥

देवी की इस फलदायी रूप में स्तुति करने का प्रयास अपने आप में अलौकिक है और जब भी देवी के इस फलदायी और वरदायक स्वरूप की विधिवत साधना किसी भी नाम से की जाती है, जब भी उनके कनकवर्धिणी या स्वर्णावती स्वरूप की साधना की जाती है, तब उस साधना के अन्त में इस स्तोत्र का पाठ करना आवश्यक हो जाता है ।

जहाँ मंत्र द्वारा साधना एवं स्तोत्र पाठ द्वारा आराधना का सुखद संगम होता है, वहीं लक्ष्मी का प्रादुर्भाव होता है । जैसा कि इस स्तोत्र से स्पष्ट है कि इस भगवती लक्ष्मी की आराधना भगवान् श्री नारायण की अभिन्न स्वरूप में की गई है अतः इस स्तोत्र का पाठ शालीग्राम की स्थापना कर यदि उसके समक्ष किया जाय तो यह स्तोत्र मात्र स्तोत्र न रह कर साकार रूप धारण कर लेता है, ऐसा कुछ विशिष्ट साधकों ने अपने अनुभव से ज्ञात किया है, क्योंकि इसमें शालीग्राम - स्थापना का विशेष महत्व है, और उसके सामने ही इस स्तोत्र का पाठ करना ज्यादा फलदायक माना गया है ।